

Chapter चौंसठ

राजा नृग का उद्धार

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह श्रीकृष्ण ने राजा नृग को शाप से मुक्त किया और

राजन्य वर्ग को ब्राह्मण की सम्पत्ति लेने के महान् खतरे के प्रति आगाह किया।

एक दिन साम्ब तथा यादव वंश के कुछ अन्य लड़के जंगल में खेलने गये। देर तक खेलने के बाद उन्हें बहुत प्यास लगी और वे इधर-उधर जल की तलाश करने लगे। उन्हें एक सूखे कुएँ के भीतर एक विचित्र जीव दिखा। यह पहाड़ की तरह का एक विशाल छिपकली जैसा (गिरगिट) था। बच्चों को तरस आ गया अतः वे इसे निकालने लगे। किन्तु चमड़े की पट्टियों और रस्सियों से निकालने के कई प्रयासों के असफल हो जाने पर वे सब कृष्ण के पास गये और सारी घटना कह सुनाई। भगवान् उनके साथ कुएँ तक गये और अपना बायाँ हाथ फैलाकर उस छिपकली को आसानी से बाहर निकाल लिया। वह जीव कृष्ण के हाथ का स्पर्श पाते ही देवता रूप में बदल गया। तब कृष्ण ने उससे पूछा, “तुम कौन हो और तुमने यह अधम रूप कैसे धारण किया है?”

उस दैवी जीव ने उत्तर दिया “मेरा नाम राजा नृग है। मैं इक्ष्वाकु का पुत्र हूँ। मैं दान देने के लिए विख्यात था। मैंने अनेक ब्राह्मणों को असंख्य गौवें दान में दीं किन्तु एक समय एक गाय, जो उच्च कोटि के ब्राह्मण की थी, मेरे झुंड में आ मिली। मैंने अनजाने यह गाय एक अन्य ब्राह्मण को दान में दे दी। जब गाय के पहले वाले स्वामी ने दूसरे ब्राह्मण को यह गाय ले जाते देखा तो उसने अपनी गाय माँगी और दूसरे ब्राह्मण से झगड़ने लगा। कुछ देर तक झगड़ते रहने के बाद वे मेरे पास आये और मैंने उन दोनों से कहा कि इस एक गाय के बदले तुम लोग एक लाख गौवें ले लो और अनजान में हुए मेरे अपराध को क्षमा कर दो। किन्तु दो में से किसी भी ब्राह्मण ने मेरा प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया और यह मामला बिना किसी निर्णय के वहीं का वहीं बना रहा।

“इसके थोड़ी देर बाद मेरी मृत्यु हो गई और यमदूतों द्वारा मुझे यमराज के दरबार में ले जाया गया। यमराज ने मुझसे पूछा कि तुम दो में से किसे पहले करना पसन्द करोगे—अपने पापों के परिणामों को भोगना या अपने पुण्य कर्मों का फल भोगना। मैंने पापों के परिणामों को पहले भोगना पसन्द किया और इस तरह मैंने छिपकली का रूप धारण किया।”

अपनी कहानी सुनाने के बाद राजा नृग ने भगवान् कृष्ण की स्तुति की और तब विशेष दैवी विमान में चढ़कर स्वर्गलोक चला गया।

भगवान् कृष्ण ने अपने पार्षदों तथा सामान्य लोगों को भी ब्राह्मण की सम्पत्ति चुराने के खतरों के

विषय में उपदेश दिया। अन्त में भगवान् अपने महल लौट आये।

श्रीबादरायणिरुवाच

एकदोपवनं राजन्जगमुर्यदुकुमारकाः ।

विहर्तुं साम्बप्रद्युम्न चारुभानुगदादयः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः—बादरायण के पुत्र (शुकदेव गोस्वामी) ने; उवाच—कहा; एकदा—एक दिन; उपवनम्—छोटे से जंगल में; राजन्—हे राजा (परीक्षित); जग्मुः—गये; यदु-कुमारकाः—यदुवंश के बालक; विहर्तुम्—खेलने के लिए; साम्ब-प्रद्युम्न-चारु-भानु-गद-आदयः—साम्ब, प्रद्युम्न, चारु, भानु, गद तथा अन्य ।

श्री बादरायणि ने कहा : हे राजा, एक दिन साम्ब, प्रद्युम्न, चारु, भानु, गद तथा यदुवंश के अन्य बालक खेलने के लिए एक छोटे से जंगल में गये।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं कि इस अध्याय में वर्णित राजा नृग की कथा समस्त दम्भी राजाओं को गम्भीर उपदेश देने के लिए है। इस कथा के माध्यम से श्रीकृष्ण ने अपने ही परिवार के सदस्यों को गम्भीर उपदेश देना चाहा जो अपने ऐश्वर्य से गर्वित हो उठे थे।

क्रीडित्वा सुचिरं तत्र विचिन्वन्तः पिपासिताः ।

जलं निरुदके कूपे ददृशुः सत्त्वमद्भुतम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

क्रीडित्वा—खेल चुकने के बाद; सु-चिरम्—दीर्घकाल तक; तत्र—वहाँ; विचिन्वन्तः—ढूँढ़ते हुए; पिपासिताः—प्यासे; जलम्—जल; निरुदके—जलरहित; कूपे—कुएँ में; ददृशुः—देखा; सत्त्वम्—जीव; अद्भुतम्—अद्भुत।

देर तक खेलते रहने के बाद उन्हें प्यास लगी। जब वे पानी की तलाश कर रहे थे तो उन्होंने एक सूखे कुएँ के भीतर झाँका और उन्हें एक विचित्र सा जीव दिखा।

कृकलासं गिरिनिभं वीक्ष्य विस्मितमानसाः ।

तस्य चोद्धरणे यत्नं चक्रुस्ते कृपयान्विताः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

कृकलासम्—छिपकली, गिरिगिट; गिरि—पर्वत; निभम्—सदृश; वीक्ष्य—देखकर; विस्मित—चकित; मानसाः—मनों वाले; तस्य—उसके; च—तथा; उद्धरणे—बाहर निकालने का; यत्नम्—प्रयास; चक्रुः—किया; ते—उन्होंने; कृपया अन्विताः—दयाभाव अनुभव करते हुए।

लड़के इस जीव को, जो कि छिपकली थी और पर्वत जैसी दिख रही थी, देखकर विस्मित हो गए। उन्हें उसके प्रति दया आ गई और वे उसे कुएँ से बाहर निकालने का प्रयास करने लगे।

चर्मजैस्तान्तवैः पाशैर्बद्ध्वा पतितमर्भकाः ।

नाशक्नुरन्समुद्धर्तुं कृष्णायाचख्युरुत्सुकाः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

चर्म-जैः—चमड़े की बनी; तान्तवैः—तथा काते सूत की बनी; पाशैः—रस्सियों से; बद्ध्वा—बाँधकर; पतितम्—गिरे हुए जीव को; अर्भकाः—लड़के; न अशक्नुरन्—समर्थ नहीं हो सके; समुद्धर्तुम्—बाहर निकालने में; कृष्णाय—कृष्ण को; आचख्युः—सूचना दी; उत्सुकाः—उत्तेजित ।

उन्होंने वहाँ फँसी उस छिपकली को चमड़े की पट्टियों तथा सूत की रस्सियों से पकड़ा किन्तु फिर भी वे उसे बाहर नहीं निकाल सके। अतः वे कृष्ण के पास गये और उत्तेजित होकर उनसे उस जीव के विषय में बतलाया ।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि इस अध्याय में यदुबालकों को, यहाँ तक कि श्री प्रद्युम्न को कम आयु का बतलाया गया है, अतः यह अवश्य कोई प्रारम्भिक लीला होगी ।

तत्रागत्यारविन्दाक्षो भगवान्विश्वभावनः ।

वीक्ष्योज्जहार वामेन तं करेण स लीलया ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; आगत्य—जाकर; अरविन्द-अक्षः—कमलनेत्रों वाले; भगवान्—भगवान् ने; विश्व—ब्रह्माण्ड के; भावनः—पालनकर्ता; वीक्ष्य—देखकर; उज्जहार—ऊपर खींच लिया; वामेन—बाएँ; तम्—उसको; करेण—हाथ से; सः—वह; लीलया—आसानी से ।

ब्रह्माण्ड के पालनकर्ता कमलनेत्र भगवान् उस कुएँ के पास गये और वहाँ वह छिपकली देखी। तत्पश्चात् उन्होंने अपने बाएँ हाथ से उसे आसानी से बाहर निकाल लिया ।

स उत्तमःश्लोककराभिमृष्टो

विहाय सद्यः कृकलासरूपम् ।

सन्तप्तचामीकरचारुवर्णः

स्वर्ग्यद्भुतालङ्करणाम्बरस्रक् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; उत्तमः-श्लोक—यशस्वी भगवान् के; कर—हाथ द्वारा; अभिमृष्टः—स्पर्श की गई; विहाय—छोड़कर; सद्यः—तुरन्त; कृकलास—छिपकली का; रूपम्—स्वरूप; सन्तप्त—पिघले; चामीकर—सोने के; चरु—सुन्दर; वर्णः—रंग; स्वर्गी—स्वर्ग का निवासी; अद्भुत—विचित्र; अलङ्करण—गहने; अम्बर—वस्त्र; स्रक्—तथा मालाएँ ।

यशस्वी भगवान् के हाथों का स्पर्श पाते ही उस जीव ने तुरन्त अपना छिपकली का रूप त्याग दिया और स्वर्ग के वासी का रूप धारण कर लिया। उसका रंग पिघले सोने जैसा सुन्दर था और वह अद्भुत गहनों, वस्त्रों तथा मालाओं से अलंकृत था ।

पप्रच्छ विद्वानपि तन्निदानं
जनेषु विख्यापयितुं मुकुन्दः ।
कस्त्वं महाभाग वरेण्यरूपो
देवोत्तमं त्वां गणयामि नूनम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

पप्रच्छ—पूछा; विद्वान्—भलीभाँति अवगत; अपि—यद्यपि; तत्—इसका; निदानम्—कारण; जनेषु—सामान्य लोगों में; विख्यापयितुम्—जानाने के लिए; मुकुन्दः—भगवान् कृष्ण ने; कः—कौन; त्वम्—तुम; महा-भाग—हे भाग्यशाली; वरेण्य—सर्वोत्तम; रूपः—स्वरूप; देव-उत्तमम्—उत्तम देवता; त्वाम्—तुमको; गणयामि—मैं मानता हूँ; नूनम्—निश्चय ही।

भगवान् कृष्ण परिस्थिति को समझ गये किन्तु सामान्य जनों को सूचित करने के लिए उन्होंने पूछा, “हे महाभाग, आप कौन हैं? आपके उत्तम स्वरूप को देखकर मैं सोच रहा हूँ कि आप अवश्य ही कोई श्रेष्ठ देवता हैं।

दशामिमां वा कतमेन कर्मणा
सम्प्रापितोऽस्यतदर्हः सुभद्र ।
आत्मानमाख्याहि विवित्सतां नो
यन्मन्यसे नः क्षममत्र वक्तुम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

दशाम्—दशा; इमाम्—इस; वा—तथा; कतमेन—किस; कर्मणा—कर्म से; सम्प्रापितः—तक लाये गये; असि—तुम हो; अतत्-अर्हः—उसके पात्र नहीं; सु-भद्र—हे महात्मा; आत्मानम्—अपने आप; आख्याहि—बतलाओ; विवित्सताम्—जानने के इच्छुक; नः—हमसे; यत्—यदि; मन्यसे—सोचते हो; नः—हमसे; क्षमम्—उचित; अत्र—यहाँ; वक्तुम्—कहना।

“आप किस विगत कर्म से इस दशा को प्राप्त हुए? हे महात्मन, ऐसा लगता है कि आप ऐसे भाग्य के योग्य नहीं थे। हम आपके विषय में जानना चाहते हैं अतः यदि आप हमें बताने का यह समय तथा स्थान उचित समझते हों तो कृपा करके अपने विषय में बतलाइये।”

श्रीशुक उवाच

इति स्म राजा सम्पृष्टः कृष्णोनानन्तमूर्तिना ।
माधवं प्रणिपत्याह किरीटेनार्कवर्चसा ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; स्म—निस्सन्देह; राजा—राजा; सम्पृष्टः—पूछे जाने पर; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; अनन्त—अनन्त; मूर्तिना—स्वरूपों वाले; माधवम्—माधव को; प्रणिपत्य—प्रणाम करके; आह—वह बोला; किरीटेन—अपने मुकुट से; अर्क—सूर्य जैसी; वर्चसा—चमक से।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार अनन्त रूप कृष्ण द्वारा पूछे जाने पर सूर्य के समान चमचमाते मुकुट वाले राजा ने माधव को प्रणाम किया और वह इस प्रकार बोला।

नृग उवाच

नृगो नाम नरेन्द्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो ।

दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशाम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

नृगः उवाच—राजा नृग ने कहा; नृगः नाम—नृग नामक; नर-इन्द्रः—मनुष्यों के ऊपर शासन करने वाला; अहम्—मैं; इक्ष्वाकु-तनयः—इक्ष्वाकु पुत्र; प्रभो—हे प्रभु; दानिषु—दानियों में; आख्यायमानेषु—गिनती किये जानेवाले; यदि—शायद; ते—तुम्हारे; कर्णम्—कानों को; अस्पृशाम्—मैंने छुआ हो।

राजा नृग ने कहा : मैं इक्ष्वाकु का पुत्र नृग नामक राजा हूँ। हे प्रभु, शायद आपने मेरे विषय में तब सुना होगा जब दानी पुरुषों की सूची बाँची जा रही होगी।

तात्पर्य : आचार्यों ने इंगित किया है कि यद्यपि “शायद आपने मेरे विषय में सुना है” जैसा वाक्य आया है किन्तु इसका आशय यही है कि इसमें सन्देह नहीं है।

किं नु तेऽविदितं नाथ सर्वभूतात्मसाक्षिणः ।

कालेनाव्याहृतदृशो वक्ष्येऽथापि तवाज्ञया ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; नु—निस्सन्देह; ते—तुम्हें; अविदितम्—अज्ञात; नाथ—हे स्वामी; सर्व—समस्त; भूत—जीवों के; आत्म—बुद्धि के; साक्षिणः—साक्षी को; कालेन—समय द्वारा; अव्याहृत—अविचल; दृशः—जिसकी दृष्टि; वक्ष्ये—मैं कहूँगा; अथ अपि—तो भी; तव—तुम्हारी; आज्ञया—आज्ञा से।

हे स्वामी, आपसे अज्ञात है ही क्या? आपकी दृष्टि काल द्वारा अविचलित है और आप सारे जीवों के मनो के साक्षी हैं। तो भी आपकी आज्ञा पाकर मैं कहूँगा।

तात्पर्य : चूँकि भगवान् सब कुछ जानने वाले हैं अतः किसी वस्तु के बारे में उन्हें सूचित करने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी भगवान् के अभिप्राय को पूरा करने के लिए राजा नृग बोलेंगे।

यावत्यः सिकता भूमेर्यावत्यो दिवि तारकाः ।

यावत्यो वर्षधाराश्च तावतीरददं स्म गाः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

यावत्यः—जितने; सिकताः—बालू के कण; भूमेः—पृथ्वी से सम्बन्धित; यावत्यः—जितने; दिवि—आकाश में; तारकाः—तारे; यावत्यः—जितनी; वर्ष—वर्षा की; धाराः—बूँदें; च—तथा; तावतीः—उतनी ही; अददम्—मैंने दीं; स्म—निस्सन्देह; गाः—गौवें।

मैंने दान में उतनी ही गौवें दीं जितने कि पृथ्वी पर बालू के कण हैं, आकाश में तारे हैं या वर्षा की बूँदें होती हैं।

तात्पर्य : भाव यह है कि राजा ने दान में असंख्य गौवें दीं ।

पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूप-

गुणोपपन्नाः कपिला हेमसृङ्गीः ।

न्यायार्जिता रूप्यखुराः सवत्सा

दुकूलमालाभरणा ददावहम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

पयः-विनीः—दूधवाली; तरुणीः—जवान; शील—अच्छा आचरण; रूप—सौन्दर्य; गुण—तथा अन्य गुण; उपपन्नाः—से युक्त; कपिलाः—भूरे रंग की; हेम—सोने के; सृङ्गीः—सींगों वाली; न्याय—न्यायपूर्वक; अर्जिताः—अर्जित की गई; रूप्य—चाँदी के; खुराः—खुरों वाली; स-वत्साः—अपने बछड़ों सहित; दुकूल—सुन्दर वस्त्र; माला—मालाओं से; आभरणाः—विभूषित; ददौ—दिया; अहम्—मैंने ।

मैंने दान में जो बछड़ों सहित गौवें दीं वे जवान, भूरी, दूध देनेवाली थीं और अच्छे आचरण और सुन्दर तथा अच्छे गुणों से सम्पन्न थीं, जिन्हें ईमानदारी से अर्जित किया गया था तथा जिनके सींग सोने से, खुर चाँदी से मढ़े थे और जो सुन्दर सजावटी वस्त्रों एवं मालाओं से अलंकृत थीं ।

स्वलङ्क तेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः

सीदत्कुटुम्बेभ्य ऋतव्रतेभ्यः ।

तपःश्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः

प्रादां युवभ्यो द्विजपुङ्गवेभ्यः ॥ १४ ॥

गोभूहिरण्यायतनाश्वहस्तिनः

कन्याः सदासीस्तिलरूप्यशय्याः ।

वासांसि रत्नानि परिच्छदान्त्रथा-

निष्ठं च यज्ञैश्चरितं च पूर्तम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

सु—अच्छी तरह; अलङ्क तेभ्यः—आभूषणों से सजाई गई; गुण—अच्छे गुण; शील—तथा चरित्र; वद्भ्यः—से युक्त; सीदत्—पीड़ित; कुटुम्बेभ्यः—कुटुम्बियों को; ऋत—सत्य; व्रतेभ्यः—समर्पित; तपः—तपस्या के लिए; श्रुत—भलीभाँति परिचित; ब्रह्म—वेदों से; वदान्य—अत्यन्त विद्वान्; सद्भ्यः—सन्त स्वभाव वालों को; प्रादाम्—मैंने दिया; युवभ्यः—युवकों को; द्विज—ब्राह्मणों को; पुम्-गवेभ्यः—अतीव विशिष्ट; गो—गौवें; भू—भूमि; हिरण्य—सोना; आयतन—घर; अश्व—घोड़े; हस्तिनः—तथा हाथी; कन्याः—विवाह योग्य पुत्रियाँ; स—सहित; दासीः—दासियाँ; तिल—तिल; रूप्य—चाँदी; शय्याः—तथा पलंग; वासांसि—वस्त्र; रत्नानि—रत्न; परिच्छदान्—गृह सामग्री; रथान्—रथ; इष्टम्—की गई पूजा; च—तथा; यज्ञैः—अग्नि यज्ञों द्वारा; चरितम्—किया गया; च—तथा; पूर्तम्—पवित्र कार्य ।

सर्वप्रथम मैंने दान प्राप्त करने वाले ब्राह्मणों को उत्तम आभूषणों से अलंकृत करके सम्मानित किया । वे अतीव सम्मानित ब्राह्मण जिनके परिवार कष्ट में थे, युवक थे तथा उत्तम चरित्र और गुणों से युक्त थे । वे सत्यनिष्ठ, तपस्या के लिए विख्यात, वैदिक शास्त्रों में पारंगत

तथा आचरण में साधुवत थे। मैंने उन्हें गौवें, भूमि, सोना, मकान, घोड़े, हाथी तथा दासी समेत विवाह के योग्य कुमारियाँ, तिल, चाँदी, सुन्दर शय्या, वस्त्र, रत्न, गृहसज्जा-सामग्री तथा रथ दान में दिये। इसके अतिरिक्त मैंने वैदिक यज्ञ किये और अनेक पवित्र कल्याण कार्य सम्पन्न किये।

कस्यचिद्विद्वजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने ।
सम्पृक्ताविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

कस्यचित्—किसी; द्विज—ब्राह्मण की; मुख्यस्य—प्रमुख; भ्रष्टा—खोई हुई; गौः—गाय; मम—मेरे; गो-धने—झुंड में; सम्पृक्ता—मिल जाने से; अविदुषा—अनजान; सा—वह; च—तथा; मया—मेरे द्वारा; दत्ता—दी गई; द्वि-जातये—(दूसरे) ब्राह्मण को।

एकबार किसी उत्तम ब्राह्मण की गाय भटक गई और मेरे झुंड में आ मिली। इससे अनजान होने के कारण मैंने वह गाय किसी दूसरे ब्राह्मण को दान में दे दी।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी की व्याख्या है कि द्विज-मुख्य शब्द ऐसे ब्राह्मण का सूचक है, जिसने दान लेना बन्द कर दिया हो और इस तरह वह अनुचित ढंग से दी गई गाय के बदले में एक लाख गौवें लेने से भी इनकार कर देगा।

तां नीयमानां तत्स्वामी दृष्ट्वावाच ममेति तम् ।
ममेति परिग्राह्याह नृगो मे दत्तवानिति ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उस (गाय) को; नीयमानाम्—ले जाते हुए; तत्—उसका; स्वामी—मालिक; दृष्ट्वा—देखकर; उवाच—कहा; मम—मेरा; इति—इस प्रकार; तम्—उसको; मम—मेरी; इति—इस प्रकार; परिग्राही—दान लेने वाला; आह—कहा; नृगः—राजा नृग ने; मे—मुझको; दत्तवान्—दिया; इति—इस प्रकार।

जब गाय के पहले मालिक ने उसे ले जाते हुए देखा तो उसने कहा, “यह मेरी है।” दूसरे ब्राह्मण ने जिसने उसे दान के रूप में स्वीकार किया था उत्तर दिया “नहीं, यह तो मेरी है। इसे नृग ने मुझे दिया था।”

विप्रौ विवदमानौ मामूचतुः स्वार्थसाधकौ ।
भवान्दातापहर्तेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद्भ्रमः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

विप्रौ—दोनों ब्राह्मण; विवदमानौ—झगड़ते हुए; माम्—मुझसे; ऊचतुः—कहा; स्व—अपना; अर्थ—स्वार्थ; साधकौ—पूरा करते हुए; भवान्—आप; दाता—देने वाले; अपहर्ता—ले लेने वाले; इति—इस प्रकार; तत्—यह; श्रुत्वा—सुनकर; मे—मेरा; अभवत्—हो गया; भ्रमः—मोहग्रस्त।

दोनों ब्राह्मण झगड़ते हुए और उनमें से हरएक अपने प्रयोजन की पुरजोर कोशिश करता हुआ, मेरे पास आये। उनमें से एक ने कहा, “आपने यह गाय मुझे दी” तथा दूसरे ने कहा, “किन्तु तुमने उसे मुझसे चुराया था।” यह सुनकर मैं भ्रमीत हो गया।

अनुनीतावुभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्रगतेन वै ।
गवां लक्षं प्रकृष्टानां दास्याम्येषा प्रदीयताम् ॥ १९ ॥
भवन्तावनुगृहीतां किङ्करस्याविजानतः ।
समुद्धरतं मां कृच्छ्रात्पतन्तं निरयेऽशुचौ ॥ २० ॥

शब्दार्थ

अनुनीतौ—विनीत भाव से प्रार्थित; उभौ—दोनों; विप्रौ—ब्राह्मणों से; धर्म—धार्मिक कर्तव्य का; कृच्छ्र—कठिन स्थिति; गतेन—(मेरे) द्वारा, जो अन्दर था; वै—निस्सन्देह; गवाम्—गौवों का; लक्षम्—एक लाख; प्रकृष्टानाम्—उत्तम गुणों वाली; दास्यामि—मैं दूँगा; एषा—इस एक; प्रदीयताम्—दे दें; भवन्तौ—आप दोनों; अनुगृहीताम्—कृपा दिखलाते हुए; किङ्करस्य—अपने सेवक का; अविजानतः—अनजान; समुद्धरतम्—बचा लीजिये; माम्—मुझको; कृच्छ्रात्—संकट से; पतन्तम्—गिरते हुए; निरये—नरक में; अशुचौ—मलिन।

इस स्थिति में अपने को कर्तव्य के घोर संकट में पाकर मैंने दोनों ब्राह्मणों से अनुनय-विनय की “मैं इस गाय के बदले एक लाख उत्तम गौवें दूँगा। कृपा करके उसे मुझे वापस कर दीजिये। आप अपने इस दास मुझपर कृपालु हों। मैं जो कर रहा था उससे अनजान था। मुझे इस कठिन स्थिति से बचा लें अन्यथा मैं निश्चित रूप से मलिन नरक में गिरूँगा।”

नाहं प्रतीच्छे वै राजन्नित्युक्त्वा स्वाम्यपाक्रमत् ।
नान्यद्गवामप्ययुतमिच्छामीत्यपरो ययौ ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अहम्—मैं; प्रतीच्छे—चाहता हूँ; वै—निस्सन्देह; राजन्—हे राजन्; इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कहकर; स्वामी—मालिक; अपाक्रमत्—चला गया; न—नहीं; अन्यत्—अतिरिक्त; गवाम्—गौवों के; अपि—भी; अयुतम्—दस हजार; इच्छामि—चाहता हूँ; इति—ऐसा कहकर; अपरः—दूसरा (ब्राह्मण); ययौ—चला गया।

गाय के इस मालिक ने कहा, “हे राजन्, मैं इस गाय के बदले में कुछ भी नहीं चाहता।” और वह चला गया। दूसरे ब्राह्मण ने घोषित किया, “मैं दस हजार अधिक गौवें भी (जितना तुम दे रहे हो उससे अधिक) नहीं चाहता।” और वह भी चला गया।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने भगवान् कृष्ण में टीका की है “इस तरह राजा के प्रस्ताव को न मानकर

दोनों ब्राह्मण क्रुद्ध होकर वहाँ से यह सोचते चले गये कि उनकी वैधस्थिति से बेदखल कर दिया गया है।”

एतस्मिन्नन्तरे यामैर्दूतैर्नीतो यमक्षयम् ।
यमेन पृष्ठस्तत्राहं देवदेव जगत्पते ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

एतस्मिन्—इस; अन्तरे—अवसर में; यामैः—यमराज के; दूतैः—दूतों द्वारा; नीतः—ले जाया गया; यम-क्षयम्—यमराज के धाम तक; यमेन—यमराज द्वारा; पृष्ठः—पूछा गया; तत्र—वहाँ; अहम्—मैं; देव-देव—हे देवताओं के स्वामी; जगत्—ब्रह्माण्ड के; पते—हे स्वामी।

हे देवों के देव, हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, इस तरह उत्पन्न परिस्थिति से लाभ उठाकर यमराज के दूत बाद में मुझे यमराज के धाम ले गये। वहाँ स्वयं यमराज ने मुझसे पूछा।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार राजा द्वारा इसके पूर्व किये गये सकाम कर्म निर्दोष थे। किन्तु अब अनजाने में त्रुटि उठ खड़ी हुई अतः जब राजा की मृत्यु हुई तो यमदूत उसे यमराज के संयमनी नामक धाम में उठा ले गये।

पूर्व त्वमशुभं भुङ्क्ष उताहो नृपते शुभम् ।
नान्तं दानस्य धर्मस्य पश्ये लोकस्य भास्वतः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

पूर्वम्—पहले; त्वम्—तुम; अशुभम्—अशुभ फल; भुङ्क्षे—अनुभव करना चाहते हो; उत आह उ—या अन्य कुछ; नृ-पते—हे राजा; शुभम्—शुभफल; न—नहीं; अन्तम्—अन्त; दानस्य—दान का; धर्मस्य—धार्मिक; पश्ये—मैं देखता हूँ; लोकस्य—जगत का; भास्वतः—चमकते हुए।

[यमराज ने कहा] हे राजा, सर्वप्रथम आप अपने पापों के फलों का अनुभव करना चाहते हैं या अपने पुण्य का। निस्सन्देह मुझे न तो आपके द्वारा सम्पन्न कर्तव्यपूर्ण दान का अन्त दीखता है, न ही उस दान के परिणामस्वरूप तेजपूर्ण स्वर्गलोक में आपके भोगों का।

पूर्व देवाशुभं भुञ्ज इति प्राह पतेति सः ।
तावद्राक्षमात्मानं कृकलासं पतन्प्रभो ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

पूर्वम्—पहले; देव—हे प्रभु; अशुभम्—पापपूर्ण फल; भुञ्जे—अनुभव करूँगा; इति—ऐसा कहकर; प्राह—कहा; पत—नीचे गिरो; इति—इस प्रकार; सः—वह; तावत्—तभी; अद्राक्षम्—मैंने देखा; आत्मानम्—अपने आपको; कृकलासम्—छिपकली; पतन्—गिरते हुए; प्रभो—हे स्वामी।

मैंने कहा : हे प्रभु, पहले मुझे अपने पापों का फल भोगने दें और यमराज बोले, “तो नीचे

गिरो ।” मैं तुरन्त नीचे गिरा और हे स्वामी, गिरते समय मैंने देखा कि मैं छिपकली बन गया हूँ।

ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव ।

स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्सन्दर्शनार्थिनः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मण्यस्य—ब्राह्मण भक्त; वदान्यस्य—उदार; तव—तुम्हारे; दासस्य—दास की; केशव—हे कृष्ण; स्मृतिः—स्मरणशक्ति; न—नहीं; अद्य—आज; अपि—तक; विध्वस्ता—विनष्ट; भवत्—आपके; सन्दर्शन—दर्शन का; अर्थिनः—इच्छुक ।

हे केशव, मैं आपके दास रूप में ब्राह्मणों का भक्त था और उनके प्रति उदार था और मैं सदैव आपके दर्शन के लिए लालायित रहता था। इसीलिए आजतक मैं (अपने विगत जीवन को) नहीं भूल पाया।

तात्पर्य : इस श्लोक पर श्रील जीव गोस्वामी की टीका इस प्रकार है “चूँकि राजा नृग ने खुले रूप से कह दिया कि उसमें दो अद्वितीय गुण थे—ब्राह्मण भक्ति तथा वदान्यता—अतः स्पष्ट है कि उसमें ये गुण अंशरूप में ही थे क्योंकि जो सचमुच शुद्ध होगा वह उनके बारे में कभी भी डींग नहीं हाँकेगा। यह भी स्पष्ट है कि राजा नृग ने ऐसे पुण्य को पुण्य के लिए ही पृथक् लक्ष्य समझा। इस तरह उसे भगवान् कृष्ण की शुद्ध भक्ति का पूरी तरह बोध नहीं हो सका। कृष्ण उसके जीवन के एकमात्र लक्ष्य नहीं थे जैसाकि अम्बरीष महाराज के नियमित अभ्यास की स्थिति में भी वे थे। न ही राजा नृग ने अम्बरीष महाराज की तरह किसी बाधा पर विजय प्राप्त की जब उन पर दुर्वासा मुनि कुपित हो गये थे। फिर भी हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि चूँकि नृग किसी न किसी कारणवश भगवान् का दर्शन कर सका अतः उसमें भगवान् की संगति पाने की सच्ची इच्छा का सद्गुण अवश्य रहा होगा।”

श्रील प्रभुपाद ने भगवान् कृष्ण में उपर्युक्त विश्लेषण की पुष्टि की है “कुल मिलाकर वह (नृग) कृष्णभावनामृत विकसित नहीं कर पाया था। कृष्णभावना-भावित व्यक्ति ईश्वर या कृष्ण के लिए प्रेम उत्पन्न करता है, शुभ या अशुभ कर्मों के लिए नहीं। इसलिए उसे ऐसे कर्म का फल नहीं मिलता। जैसाकि ब्रह्म संहिता में कहा गया है कि भक्त, भगवान् की कृपा से, कभी भी सकाम कर्मों के फल नहीं भोगता।”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने निम्नलिखित टीका की है—“जब नृग ने ‘आपके दर्शन के लिए लालायित’ कहा तो वह किसी ऐसी घटना का उल्लेख कर रहा था जिसमें एक बार उसकी भेंट किसी

महान् भक्त से हुई थी। यह भक्त भगवान् के सर्वोत्तम अर्चाविग्रह के लिए मन्दिर प्राप्त करने का इच्छुक था और वह भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत जैसे शास्त्रों की प्रतियाँ भी प्राप्त करना चाहता था। अतीव उदार होने के कारण नृग ने इन वस्तुओं का प्रबन्ध कर दिया। इससे भक्त इतना प्रसन्न हुआ कि उसने राजा को आशीर्वाद दिया, “हे राजन्! आपको भगवान् के दर्शन हों।” तभी से नृग भगवान् का दर्शन करना चाह रहा था।

स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा
योगेश्वरः श्रुतिदृशामलहृद्भिभाव्यः ।
साक्षादधोक्षज उरुव्यसनान्धबुद्धेः
स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य भवापवर्गः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; त्वम्—तुम; कथम्—कैसे; मम—मेरा; विभो—हे सर्वशक्तिमान्; अक्षि-पथः—दृष्टिगोचर; पर-आत्मा—परमात्मा; योग—योग के; ईश्वरैः—स्वामियों द्वारा; श्रुति—श्रुतियों की; दृशा—आँखों के द्वारा; अमल—निर्मल; हृत्—उनके हृदयों के भीतर; विभाव्यः—ध्यान किये जाने योग्य; साक्षात्—प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर; अधोक्षज—हे दिव्य प्रभु, जो इन्द्रियों से नहीं देखे जा सकते; उरु—कठिन; व्यसन—कष्टों द्वारा; अन्ध—अन्धा; बुद्धेः—बुद्धिवाला; स्यात्—शायद हो; मे—मेरे लिए; अनुदृश्यः—देखे जाने योग्य; इह—इस जगत में; यस्य—जिसका; भव—भौतिक जीवन का; अपवर्गः—अन्त।

हे विभु! मैं आपको अपने समक्ष कैसे देख पा रहा हूँ? आप तो परमात्मा हैं जिस पर बड़े से बड़े योगेश्वर केवल वेद रूपी दिव्य आँख के द्वारा अपने शुद्ध हृदयों के भीतर ध्यान लगा सकते हैं। तो हे दिव्य प्रभु, आप किस तरह मुझे प्रत्यक्ष दिख रहे हैं क्योंकि मेरी बुद्धि भौतिक जीवन के कठिन कष्टों से अन्धी हो चुकी है? जिसने इस जगत के भव-बन्धनों को समाप्त कर दिया है, वही आपको देख सकता है।

तात्पर्य : छिपकली का शरीर होते हुए भी राजा नृग को अपना पूर्व-जन्म स्मरण था। और अब जब उसे भगवान् का दर्शन करने का अवसर मिला तो वह यह समझ सकता था कि उसे भगवान् की विशेष कृपा प्राप्त हुई है।

देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम ।
नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय ॥ २७ ॥
अनुजानीहि मां कृष्ण यान्तं देवगतिं प्रभो ।
यत्र क्वापि सतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदास्पदम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

देव-देव—स्वामियों के स्वामी; जगत्—ब्रह्माण्ड के; नाथ—हे स्वामी; गो-विन्द—हे गौवों के स्वामी; पुरुष-उत्तम—हे पुरुषोत्तम; नारायण—हे समस्त जीवों के आधार; हृषीकेश—हे इन्द्रियों के स्वामी; पुण्य-श्लोक—हे दिव्य श्लोकों द्वारा स्तुति किये जाने वाले; अच्युत—हे अच्युत; अव्यय—हे न बदलने वाले; अनुजानीहि—कृपया जाने दें; माम्—मुझको; कृष्ण—हे कृष्ण; यान्तम्—जाने वाले को; देव-गतिम्—देवताओं के लोक में; प्रभो—हे प्रभु; यत्र क्व अपि—जहाँ कहीं भी; सतः—रहते हुए; चेतः—मन; भूयात्—हो; मे—मेरा; त्वत्—तुम्हारे; पद—पैरों की; आस्पदम्—शरण।

हे देवदेव, जगन्नाथ, गोविन्द, पुरुषोत्तम, नारायण, हृषीकेश, पुण्यश्लोक, अच्युत, अव्यय, हे कृष्ण, कृपा करके मुझे अब देवलोक के लिए प्रस्थान करने की अनुमति दें। हे प्रभु, मैं जहाँ भी रहूँ, मेरा मन सदैव आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है भगवान् की कृपा प्राप्त हो जाने से उसकी श्रद्धा को बल मिला और इस तरह दास पद प्राप्त करके राजा नृग ने भगवान् के नामों का उच्चारण करते हुए उनका विधिवत यशोगान किया और तब भगवान् से विदा लेने के लिए अनुमति माँगी। उसकी स्तुति का भाव यह है “आप देवदेव अर्थात् देवताओं के स्वामी और जगन्नाथ हैं अतः आप मेरे भी नाथ होइये। हे गोविन्द! आप जिस कृपा-चितवन से गौवों को मोहते हैं उसीसे मुझे अपनी सम्पत्ति बना लें। आप ऐसा कर सकते हैं क्योंकि आप पुरुषोत्तम हैं। हे नारायण! चूँकि आप जीवों के आधार हैं अतः मेरे आश्रय बनें, भले ही मैं बुरा क्यों न होऊँ। हे हृषीकेश! मेरी इन्द्रियों को अपनी बना लें। हे पुण्यश्लोक! अब आप नृग के उद्धारक के रूप में विख्यात हो चुके हैं। हे अच्युत! आप मेरे मन से कभी ओझल न हों। हे अव्यय! मेरे मन में कभी भी आपकी न्यूनता न हो। इन श्लोकों का तात्पर्य इस रूप में श्रीमद्भागवत के महान् टीकाकार श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती द्वारा दिया गया है।

नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।

कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; ते—आपको; सर्व-भावाय—समस्त प्राणियों के स्रोत; ब्रह्मणे—परम सत्य को; अनन्त—असीम; शक्तये—शक्ति वाले; कृष्णाय—कृष्ण को; वासुदेवाय—वासुदेव के पुत्र; योगानाम्—योग की समस्त विधियों के; पतये—स्वामी को; नमः—नमस्कार.

हे वसुदेवपुत्र कृष्ण, मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ आप समस्तजीवों के उद्गम हैं, परम सत्य हैं, अनन्त शक्तियों के स्वामी हैं और समस्त आध्यात्मिक प्रवर्गों के स्वामी हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधरस्वामी की टीका है कि यहाँ पर राजा नृग ब्रह्म को नमस्कार करता है—

अर्थात् उस परम सत्य को जो कर्म करते हुए भी अपरिवर्तित रहते हैं प्राचीन काल से ही पाश्चात्य दार्शनिक इस प्रश्न को लेकर उलझ रहे हैं कि ईश्वर किस तरह अपरिवर्तित रहते हुए भी कर्म कर सकता है श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं कि इस शंका का समाधान अनन्त शक्तये शब्द से हो जाता है, जो यह बतलाता है कि ईश्वर “असीम शक्ति के स्वामी” हैं इस तरह वे अनन्त शक्तियों के द्वारा, अपनी अनिवार्य प्रकृति को बदले बिना ही, असंख्य कर्म कर सकते हैं।

राजा नृग नित्य आनन्द स्वरूप और जीवन के चरम-लक्ष्य श्रीकृष्ण को पुनः नमस्कार करता है कृष्ण के पवित्र नाम का विश्लेषण महाभारत के एक श्लोक (उद्योग पर्व ७१.४) में हुआ है, जिसे श्रील प्रभुपाद ने चैतन्य चरितामृत (मध्य ९.३० तात्पर्य) में उद्धृत किया है—

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः ।

तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥

कृष् शब्द भगवान् का आकर्षक स्वरूप है और ण का अर्थ है “आध्यात्मिक आनन्द” जब कृष् क्रिया ण से मिलती है, तो कृष्ण बनता है, जो परब्रह्म का सूचक है।

राजा नृग उपर्युक्त स्तुति तब करता है जब वह भगवान् की संगति छोड़कर जाने वाला होता है।

इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्वमौलिना ।

अनुज्ञातो विमानाच्छयमारुहत्पश्यतां नृणाम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कहकर; तम्—उनको; परिक्रम्य—परिक्रमा करके; पादौ—पाँवों को; स्पृष्ट्वा—छूकर; स्व—अपने; मौलिना—मुकुट से; अनुज्ञातः—विदा पाकर; विमान—दैवीयान पर; अछयम्—अत्युत्तम; आरुहत्—चढ़ गया; पश्यताम्—देखते देखते; नृणाम्—मनुष्यों के.

इस तरह कह कर महाराज नृग ने भगवान् कृष्ण की परिक्रमा की और उनके चरणों पर अपना मुकुट छुवाया तब विदाई की अनुमति पाकर वहाँ पर उपस्थित लोगों के देखते देखते राजा नृग एक अद्भुत स्वर्गिक विमान पर चढ़ गया

कृष्णः परिजनं प्राह भगवान्देवकीसुतः ।

ब्रह्मण्यदेवो धर्मात्मा राजन्याननुशिक्षयन् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

कृष्णः—कृष्ण ने; परिजनम्—निजी संगियों से; प्राह—बोले; भगवान्—भगवान्; देवकी-सुतः—देवकी का पुत्र; ब्राह्मण्य—ब्राह्मण भक्त; देवः—ईश्वर; धर्म—धर्म का; आत्मा—आत्मा; राजन्यान्—राजसी वर्ग को; अनुशिक्षयन्—शिक्षा देने के लिए.

तब देवकी पुत्र, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण जो ब्राह्मणों के प्रति विशेष रूप से अनुरक्त हैं और जो साक्षात् धर्म के सार हैं अपने निजी संगियों से बोले और इस प्रकार राजसी वर्ग को शिक्षा दी।

दुर्जरं बत ब्रह्मस्वं भुक्तमग्नेर्मनागपि ।
तेजीयसोऽपि किमुत राज्ञां ईश्वरमानिनाम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

दुर्जरम्—अपाच्य; बत—निस्सन्देह; ब्रह्म—ब्राह्मण की; स्वम्—सम्पत्ति; भुक्तम्—भोगी गई; अग्नेः—अग्नि की अपेक्षा; मनाक्—रंच भर; अपि—भी; तेजीयसः—तेजस्वी के लिए; अपि—भी; किम् उत—तो क्या कहा जाय; राज्ञाम्—राजाओं के; ईश्वर—नियंत्रक; मानिनाम्—मानने वाले.

[भगवान् कृष्ण ने कहा] : एक ब्राह्मण की सम्पत्ति कितनी अपाच्य होती है, भले ही उसका रंचभर हो और अग्नि से भी अधिक तेजस्वी द्वारा उपभोग क्यों न किया जाय! तो फिर उन राजाओं के विषय में क्या कहा जाय जो अपने को स्वामी मानकर उसका भोग करना चाहते हैं।

तात्पर्य : तपस्या, योग इत्यादि द्वारा शक्तिशाली बनने वाले भी ब्राह्मण की चुराई हुई सम्पत्ति का भोग नहीं कर सकते तो फिर अन्यो के विषय में क्या कहा जाय ?

नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया ।
ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अहम्—मैं; हालाहलम्—हालाहल नामक विष जिसका पान शिवजी ने बिना नशे के प्रभाव से किया; मन्ये—मैं मानता हूँ; विषम्—विष; यस्य—जिसका; प्रतिक्रिया—प्रभाव; ब्रह्म-स्वम्—ब्राह्मण की सम्पत्ति; हि—निस्सन्देह; विषम्—विष; प्रोक्तम्—कहा गया; न—नहीं; अस्य—इसका; प्रतिविधिः—उपचार, निराकरण; भुवि—संसार में.

मैं हालाहल को असली विष नहीं मानता क्योंकि इसका भी निराकरण हो जाता है, किन्तु ब्राह्मण की सम्पत्ति चुराये जाने को असली विष कहा जा सकता है, क्योंकि इस संसार में इसका कोई उपचार नहीं है।

तात्पर्य : जो किसी ब्राह्मण की सम्पत्ति को चुराकर यह सोचता है कि वह इसका भोग करेगा तो वास्तव में वह अत्यन्त घातक विष का पान करता है।

हिनस्ति विषमत्तारं वह्निरद्भिः प्रशाम्यति ।
कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

हिनस्ति—नष्ट करता है; विषम्—विष को; अत्तारम्—निगलने वाले को; वह्निः—अग्नि; अद्भिः—जल से; प्रशाम्यति—बुझाई जाती है; कुलम्—परिवार को; स-मूलम्—जड़ समेत; दहति—जलाती है; ब्रह्म-स्व—ब्राह्मण की सम्पत्ति; अरणि—आग जलाने वाला काष्ठ; पावकः—अग्नि.

विष केवल उसी को मारता है, जो उसे निगलता है और सामान्य अग्नि को पानी से बुझाया जा सकता है किन्तु ब्राह्मण की सम्पत्ति रूपी अरणि से उत्पन्न अग्नि चोर के समस्त परिवार को समूल नष्ट कर देती है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ब्राह्मण की सम्पत्ति की चोरी से उत्पन्न अग्नि की तुलना उस अग्नि से करते हैं, जो पुराने वृक्ष के कोटर के भीतर जलती है ऐसी अग्नि को अनेक बार होने वाली वर्षा का जल भी नहीं बुझा पाता—यह भीतर ही भीतर पूरे वृक्ष को—भूमि के भीतर जड़ों तक जला डालती है इसी प्रकार ब्राह्मण की सम्पत्ति के चुराने से उत्पन्न अग्नि अत्यन्त भयानक होती है और यथासम्भव किसी भी तरह से इससे बचना चाहिए

ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं हन्ति त्रिपूरुषम् ।
प्रसह्य तु बलाद्भुक्तं दश पूर्वान्दशापरान् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म-स्वम्—ब्राह्मण की सम्पत्ति; दुरनुज्ञातम्—समुचित अनुमति न दिये जाने पर; भुक्तम्—भोगी गई; हन्ति—विनष्ट करती है; त्रि—तीन; पूरुषम्—व्यक्तियों को; प्रसह्य—बलपूर्वक; तु—लेकिन; बलात्—बाह्य शक्ति (सरकारी इत्यादि) का प्रयोग करने से; भुक्तम्—भोगी गई; दश—दस; पूर्वान्—पहले के; दश—दस; अपरान्—बाद के.

यदि कोई व्यक्ति बिना उचित अनुमति के ब्राह्मण की सम्पत्ति का भोग करता है, तो वह सम्पत्ति उस व्यक्ति की तीन पीढ़ियों तक को नष्ट कर देती है। किन्तु यदि वह इसे बलपूर्वक या राजकीय अथवा किसी बाहरी सहायता से छीन लेता है, तो उसके पूर्वजों की दस पीढ़ियाँ तथा उसके उत्तराधिकारियों की दस पीढ़ियाँ विनष्ट हो जाती हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार त्रि-पूरुष द्योतक है अपना, अपने पुत्रों तथा अपने पौत्रों का

राजानो राजलक्ष्म्यान्था नात्मपातं विचक्षते ।

निरयं येऽभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वं साधु बालिशाः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

राजानः—राजपरिवार के सदस्य; राज—राजसी; लक्ष्म्या—ऐश्वर्य से; अन्थाः—अन्धे हुए; न—नहीं; आत्म—अपना; पातम्—पतन; विचक्षते—पहले से देख पाते हैं; निरयम्—नरक; ये—जो; अभिमन्यन्ते—लालायित रहते हैं; ब्रह्म-स्वम्—ब्राह्मण की सम्पत्ति; साधु—उपयुक्त; बालिशः—बचकाना, मूर्ख.

राजसी ऐश्वर्य से मदान्ध राजा अपना पतन पहले से देख पाने में असमर्थ रहते हैं। वे ब्राह्मण की सम्पत्ति के लिए मूर्खतापूर्वक लालायित रहकर वास्तव में नरक जाने के लिए लालायित रहते हैं।

गृह्णन्ति यावतः पांशून्क्रन्दतामश्रुबिन्दवः ।

विप्राणां हतवृत्तीनाम्बदान्यानां कुटुम्बिनाम् ॥ ३७ ॥

राजानो राजकुल्याश्च तावतोऽब्दान्निरङ्कुशाः ।

कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते ब्रह्मदायापहारिणः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

गृह्णन्ति—स्पर्श करते हैं; यावतः—जितने; पांशून्—धूल के कण; क्रन्दताम्—क्रन्दन करते हुए; अश्रु-बिन्दवः—आँसू की बूँदें; विप्राणाम्—ब्राह्मणों के; हत—हरण की गई; वृत्तीनाम्—जीविका के साधनों का; बदान्यानाम्—उदार; कुटुम्बिनाम्—परिवार के लोगों के; राजानः—राजालोग; राज-कुल्याः—राज परिवार के अन्य सदस्य; च—भी; तावतः—उतने; अब्दान्—वर्षों तक; निरङ्कुशाः—अनियंत्रित; कुम्भी-पाकेषु—कुम्भीपाक नामक नरक में; पच्यन्ते—पकाये जाते हैं; ब्रह्म-दाय—ब्राह्मण के हिस्से का; अपहारिणः—अपहरण करने वाले.

जिनके ऊपर आश्रित परिवार हो तथा जिनकी सम्पत्ति हड़प ली गई हो, ऐसे उदारचेता ब्राह्मणों के आँसुओं से धूल के जितने कणों का स्पर्श होता है, उतने वर्षों तक वे अनियंत्रित राजा, जो ब्राह्मण की सम्पत्ति को हड़प लेते हैं, अपने राज परिवारों के साथ कुम्भीपाक नामक नरक में भुने जाते हैं।

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ।

षष्टिवर्षसहस्राणि विष्टायां जायते कृमिः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

स्व—अपने द्वारा; दत्ताम्—दिया गया; पर—दूसरे के द्वारा; दत्ताम्—दिया गया; वा—अथवा; ब्रह्म-वृत्तिम्—ब्राह्मण की सम्पत्ति; हरेत्—चुराता है; च—तथा; यः—जो; षष्टि—साठ; वर्ष—वर्षों तक; सहस्राणि—हजारों; विष्टायाम्—मल में; जायते—उत्पन्न होता है; कृमिः—कीट.

चाहे अपना दिया दान हो या किसी अन्य का, जो व्यक्ति किसी ब्राह्मण की सम्पत्ति को चुराता है, वह साठ हजार वर्षों तक मल में कीट के रूप में जन्म लेगा

न मे ब्रह्मधनं भूयाद्यद्गृध्वाल्पायुषो नराः ।

पराजिताश्च्युता राज्याद्भवन्त्युद्वेजिनोऽहयः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; मे—मुझको; ब्रह्म—ब्राह्मणों की; धनम्—सम्पत्ति; भूयात्—चाहे जो हो; यत्—जो; गृध्वा—इच्छा करके; अल्प-
आयुषः—अल्पायु; नराः—मनुष्यगण; पराजिताः—पराजित; च्युताः—विहीन; राज्यात्—राज्य से; भवन्ति—हो जाते हैं;
उद्वेजिनः—कष्ट पहुँचाने वाले; अहयः—सर्प.

मैं ब्राह्मणों की सम्पत्ति की कामना नहीं करता जो इसका लोभ करते हैं उनकी आयु क्षीण होती है और वे पराजित होते हैं, वे अपने राज्य खो देते हैं और दुसरोँ को कष्ट पहुँचाने वाले सर्प बनते हैं।

विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः ।

घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

विप्रम्—विद्वान् ब्राह्मण के प्रति; कृत—किया गया; आगसम्—पाप; अपि—भी; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; द्रुह्यत—शत्रु की तरह व्यवहार करते हैं; मामकाः—हे मेरे अनुयायियो; घ्नन्तम्—शारीरिक प्रहार करते हुए; बहु—बारम्बार; शपन्तम्—शाप देते हुए; वा—अथवा; नमः-कुरुत—तुम्हें नमस्कार करना चाहिए; नित्यशः—सदैव.

हे मेरे अनुयायियो, तुम कभी भी विद्वान् ब्राह्मण के साथ कठोर व्यवहार न करो, भले ही उसने पाप क्यों न किये हों। यदि वह तुम्हारे शरीर पर वार भी करे या बारम्बार तुम्हें शाप दे तो भी उसे नमस्कार करते रहो

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण यह उपदेश न केवल अपने निजी संगियों को देते हैं अपितु उन सबों को भी देते हैं, जो अपने को भगवान् के अनुयायी होने का दावा करते हैं।

यथाहं प्रणमे विप्राननुकालं समाहितः ।

तथा नमत यूयं च योऽन्यथा मे स दण्डभाक् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; अहम्—मैं; प्रणमे—प्रणाम करता हूँ; विप्रान्—ब्राह्मणों को; अनु-कालम्—सर्वदा; समाहितः—सावधानी के साथ; तथा—उसी तरह; नमत—नमस्कार करना चाहिए; यूयम्—तुम सबों को; च—भी; यः—जो; अन्यथा—अन्यथा; मे—मेरे द्वारा; सः—वह; दण्ड—दण्ड का; भाक्—भागी.

जिस तरह मैं सदैव ध्यान रखते हुए ब्राह्मणों को नमस्कार करता हूँ उसी तरह तुम सबों को चाहिए कि उन्हें नमस्कार करो। जो कोई भी अन्यथा कर्म करता है, उसे मैं दण्ड देता हूँ

ब्राह्मणार्थो ह्यपहतो हर्तारं पातयत्यधः ।

अजानन्तमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

ब्राह्मण—ब्राह्मण की; अर्थः—सम्पदा; हि—निस्सन्देह; अपहतः—हरण की गई; हर्तारम्—लेने वाले को; पातयति—गिरा दिया जाता है; अधः—नीचे; अजानन्तम्—अनजाने में; अपि—भी; हि—निस्सन्देह; एनम्—इस; नृगम्—राजा नृग को; ब्राह्मण—ब्राह्मण की; गौः—गाय; इव—सदृश.

जब किसी ब्राह्मण की सम्पत्ति अनजाने में भी चुराई जाती है, तो उस व्यक्ति को निश्चित रूप से पतित होना पड़ता है, जिस तरह ब्राह्मण की गाय से नृग को पतित होना पड़ा

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् यह प्रदर्शित करना चाहते हैं कि उनके उपदेश केवल सैद्धान्तिक न होकर व्यावहारिक हैं जैसाकि नृग महाराज के साथ निश्चित रूप से हुआ।

एवं विश्राव्य भगवान्मुकुन्दो द्वारकौकसः ।

पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमन्दिरम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; विश्राव्य—सुनाकर; भगवान्—भगवान्; मुकुन्दः—कृष्ण; द्वारका-ओकसः—द्वारकावासियों को; पावनः—शुद्ध करने वाले; सर्व—सभी; लोकानाम्—लोकों के; विवेश—प्रविष्ट हुए; निज—अपने; मन्दिरम्—महल में।

इस तरह से द्वारका निवासियों को उपदेश देने के बाद, समस्त लोकों को पवित्र करने वाले भगवान् मुकुन्द अपने महल में प्रविष्ट हुए।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत “राजा नृग का उद्धार” नामक चौंसठवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।